२. काव्यशास्त्र

"**साहित्यशास्त्र**" का दूसरा नाम "**काव्यशास्त्र**" भी है । आचार्य कुन्तक ने "साहित्य" शब्द के यथार्थ अर्थ का प्रतिपादन करते हुये जहाँ यह अपना मत अभि- व्यक्त किया है कि शब्द और अर्थ के विशिष्ट सम्बन्ध को "**साहित्य**" कहते हैं, वहाँ उनका यह भी कहना है कि "साहित्यशास्त्र" में प्रयुक्त "**साहित्य**" शब्द "**काव्य**" अर्थ में सीमित हुआ समझना चाहिये । "साहित्यशास्त्र" पर लिखे हुये **काव्यालंकार, काव्यालंकारसूत्र, काव्यादर्श और काव्यप्रकाश** आदि ग्रन्थों के नामों को देखकर भी यह स्वभावतः अनुमान किया जा सकता है कि कालान्तर में "**साहित्यशास्त्र**" को ही "**काव्यशास्त्र**" के नाम से कहा जाने लगा होगा । इस दृष्टि से **साहित्य** शब्द के वास्तविक अर्थ का परिचायक "**काव्य**" शब्द को समझना चाहिये । संस्कृत में काव्य शब्द से श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य--इन दोनों का ही ग्रहण किया जाता है । यही कारण है कि "**काव्यशास्त्र**" के अन्दर श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य दोनों के ही अङ्गों का विशद विवेचन अपेक्षित होता है ।

दण्डी कहते हैं कि "**यथासामर्थ्यमस्माभिः क्रियते काव्यलक्षणम्**" (१.२), ध्वन्यालोक ने "साहित्यशास्त्र" पर लिखने वालों को "**काव्यलक्षणविधायिनः**" कहा है । भामह अपने "काव्यालङ्कार" ग्रन्थ की समाप्ति में कहते हैं—"**अवलोक्य मतानि सत्कवीनां स्वधिया च काव्यलक्ष्म**" । इन उपर्युक्त उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि "साहित्यशास्त्र" को "**काव्यशास्त्र**" नाम से भी अभिहित किया गया है । साहित्य शब्द का प्रयोग "काव्य" अर्थ में भी बहुधा हुआ है । तद्यथा—**साहित्यसंगीतकला- विहीनः**" में स्पष्टतः साहित्य शब्द काव्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि "साहित्यशास्त्र" के लिये "**काव्यशास्त्र**" का प्रयोग भी बराबर होता आया है।

३. अलङ्कारशास्त्र

साहित्यशास्त्र और काव्यशास्त्र का ही नामान्तर "**अलङ्कारशास्त्र**" है। "अलङ्कार" शब्द की व्याकरणिक दृष्टि से दो प्रकार की व्युत्पत्ति की जा सकती है—(१) **अलङ्करणमलङ्कारः**—यहाँ "**भावे**" पाणिनि ३.३.१८ से भाव में घञ् प्रत्यय हुआ है। (२) "**अलंक्रियतेऽनेन**"—यहाँ "**अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्**" से करण में घञ् प्रत्यय हुआ है। इसप्रकार दोनों प्रकार से "**अलङ्कार**" शब्द को सिद्ध किया गया है। सम्भवतः "साहित्यशास्त्र" के विवेच्य विषयों में से अलङ्कारों के प्रमुख विवेच्य विषय होने के कारण "**प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति**" न्याय से उनको "**अलंकारशास्त्र**" कहा गया है। अलङ्कारों पर विवेचन करने वालों में भामह, दण्डी, उद्भट, वामन और रुद्रट हैं। इनके अतिरिक्त अन्य आचार्य मम्मट, प्रतिहारेन्दुराज, रुय्यक, भोज, राजशेखर, जयदेव, विश्वनाथ कविराज, अप्पयदीक्षित तथा पण्डितराज जगन्नाथ हैं। वामन ने अपने "**काव्यालङ्कारसूत्र**" में अलङ्कार शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया है—(१) **सौन्दर्य के अर्थ में**—"**काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्**", "**सौन्दर्यमलङ्कारः**" (१.१.१—२) अर्थात् काव्य अलङ्कारों के कारण उपादेय होता है तथा अलङ्कार का अर्थ सौन्दर्य है। और (२) **अलङ्कार के अर्थ में**–"**अलंक्रियतेऽनेन**", "**अलंकृतिरलङ्कारः**"। "**करणव्युत्पत्या पुनरलङ्कारशब्दोऽयमुपमादिषु वर्तते**"—**इति**। वामन की इस स्थापना की व्याख्या करते हुये कामधेनु कहता है कि–"**योऽयमलङ्कारः काव्यग्रहणहेतुत्वेनोपन्यस्यते तद्व्युत्पादकत्वात् शास्त्रमपि अलङ्कारनाम्ना व्यपदिश्यत इति शास्त्रस्यालङ्कारत्वेन प्रसिद्धिः प्रतिष्ठिता स्याद् इति सूचयितुमयं विन्यासः कृतः काव्यं ग्राह्यमलङ्कारादिति**" इसप्रकार अलङ्कार प्रधान लक्षण ग्रन्थों का सामान्य नाम "**अलङ्कारशास्त्र**" कहा गया है।

समुद्रबन्ध अलङ्कारसर्वस्व टीका में इसप्रकार कहा गया है—

"**विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्। तद्वैशिष्ट्यं धर्ममुखेन, व्यापारमुखेन, व्यंग्यमुखेनेति त्रयः पक्षाः इति। धर्मोऽपि द्विविधः नित्योऽनित्यश्च। अथानित्यधर्मोऽलंक्रियतेऽनेनेतिकरणव्युत्पत्या सिद्धोऽलङ्कारः। नित्यधर्मस्तु गुण एव। एवं व्यापारोऽपि द्विविधो वक्रोक्तिर्भावकत्वं च। तदित्थं प्राधान्येन व्यवस्थितोऽयमालङ्कारिकसमयः**"।

इसप्रकार 'साहित्यशास्त्र" अथवा "काव्यशास्त्र" का ही दूसरा नाम 'अलङ्कार शास्त्र' प्रतिष्ठित हुआ और इस नाम से व्यवहृत होने लगा। रसगङ्गाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ की "**अलङ्कारान् सर्वानपि गलितगर्वान् रचयतु**" के अन्दर लक्षणा भी हो सकती है और इससे "**अलङ्कारशास्त्र**" नाम की सार्थकता भी प्रतिपादित होती है।

राजशेखर की काव्यमीमांसा में कहा गया है कि "**उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तमम्ङ्गमिति यायावरीयः। ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानाद्वेदार्थानवगतिः**"—अर्थात्

यायावरीय का मत है कि वेदों के उपकारक होने से "अलङ्कारशास्त्र" सातवाँ वेदाङ्ग है। और अलङ्कारशास्त्र के स्वरूप का ज्ञान न होने से वेदों के अर्थ का ज्ञान नहीं होता है। तद्यथा—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

इस वेदमन्त्र का ज्ञान "**अलङ्कारशास्त्र**" के ज्ञान के विना सम्भव नहीं है। कहने का आशय यह है कि शोकधर्मा जीव और आनन्दधर्मा परमेश्वर की नियम्य और नियन्ता-रूप से स्थिति है। इसका वर्णन उपर्युक्त मन्त्र में **अतिशयोक्ति अलङ्कार** से किया गया है। अतः यदि अतिशयोक्ति अलङ्कार के स्वरूप का ज्ञान नहीं है तो उक्त वेदमन्त्र के भाव को हृदयंगम करना कठिन है। इस अतिशयोक्ति का ज्ञान "**अलङ्कारशास्त्र**" से होता है, अतः "अलङ्कारशास्त्र" के ज्ञान के अभाव में वेदमन्त्रों के अर्थ का ज्ञान सम्भव नहीं है। इसीलिये अलङ्कारशास्त्र को सातवाँ वेदाङ्ग कहा गया है।

परिणामतः काव्य के विविध अङ्गों का विवेचन किये जाने से संस्कृत-साहित्य में लक्षणग्रन्थों को **साहित्यशास्त्र, काव्यशास्त्र** और **अलंकारशास्त्र** के नाम से अभिहित किया जाता है।

---

४. साहित्य क्या है ?

आधुनिक काल में अंग्रेजी के Sorry और Thanks शब्दों ने जिसप्रकार अपने मूल अर्थ के महत्त्व को खो दिया है, उसीप्रकार की बहुत कुछ स्थिति हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले इस "**साहित्य**" शब्द की है। आप छोटे से छोटे अपराध से लेकर बड़े से बड़ा अपराध कर जाइये Sorry कह देने मात्र से आपके सभी अपराध क्षम्य हो जायेंगे। इसीप्रकार किसी ने आपका कितना भी बड़े से बड़ा उपकार क्यों न किया हो Thanks कह देने मात्र से आप अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझियेगा। आज पग-पग पर प्रयुक्त होने वाले इस Thanks शब्द ने "**कृतज्ञता**" शब्द को केवल कोश की वस्तु बना दिया है। इसीप्रकार की स्थिति "**साहित्य**" शब्द की है। आप किसी स्थान पर आयोजित होने वाली प्रदर्शनी को देखने चले जाइये आपको "**प्रदर्शनी साहित्य**" मिल जायेगा। सिनेमा देखने जाइये "**सिनेमा साहित्य**" तैयार मिलेगा। कहने का आशय यह है कि आज केवल दर्शन, भूगोल, इतिहास, ज्योतिष तथा अर्थशास्त्र आदि विषयों पर लिखी हुई सामग्री ही साहित्य नहीं समझी जाती है, अपितु सम्पूर्ण विज्ञाप्य वस्तु तथा किसी भी प्रकार का आने वाला सूचना पत्र भी साहित्य नाम से कहा ही नहीं जाता है, अपितु माना जाता है। जिसप्रकार अंग्रेजी शब्द Literature का प्रयोग साधारण बोलचाल में अक्षरों में लिखित प्रत्येक

सामग्री के लिये किया जाता है, उसीप्रकार "साहित्य" शब्द ने भी व्यापक अर्थ ग्रहण कर लिया है। इस स्थिति में, जब कि आजकल साहित्य शब्द के अन्दर सभीप्रकार की लिखित सामग्री का ग्रहण होने लगा है, तब साहित्य के जिज्ञासु विद्यार्थी के लिये यह जानना आवश्यक हो जाता है कि इस "साहित्य" शब्द का अपना मूल अर्थ क्या है ? इसी जिज्ञासा के लिये यह प्रकरण प्रारम्भ किया जा रहा है।

व्युत्पत्तिपरक "सहित्य" की व्याख्या इसप्रकार से की जा सकती है—

(१) साहित्य की सामान्यरूप से व्युत्पत्ति है—"**साहितस्य भावः साहित्यम्**"। यहाँ पर "**गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च**" पा० ५।१।१२४ से ष्यञ् प्रत्यय होकर "साहित्य" शब्द बना है। यहाँ यह स्वाभाविक रूप से प्रश्न पैदा होता है कि किनका सहभाव ? **उत्तर है**—"**सहभावश्चाष्टादशप्रस्थानभिन्नानां विद्यानाम्**"—अर्थात् प्रस्थानभिन्न विद्याओं के सहभाव को "साहित्य" कहते हैं। ये अठारह विद्यायें इसप्रकार हैं—ऋगादि चार वेद, शिक्षा आदि छः वेदाङ्ग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र। इसके विपरीत कुछ विद्वान् चौदह विद्या स्थान मानते हैं और इनमें चार वेद, छः वेदाङ्ग और चार शास्त्रों का परिगणन करते हैं। यायावरीय राजशेखर का मत है कि साङ्गोपाङ्ग वेदादिकों का वर्णन एकमात्र काव्य में विद्यमान रहता है, अतः **काव्य** पन्द्रहवाँ विद्यास्थान है। कुछ विद्वान् वार्ता, कामसूत्र, शिल्पशास्त्र और दण्डनीति को मिलाकर १८ विद्यास्थान मानते हैं।

(२) "**साहित्यस्य कर्म साहित्यम्**"—इस व्युत्पत्ति के अनुसार कविकर्मरूप "साहित्य" के अन्दर सम्पूर्ण वाङ्मय का अन्तर्भाव हो जाता है।

(३) "**हितेन सह सहितं तस्य भावः साहित्यम्**"—इस व्युत्पत्ति का आश्रय लेकर ही सम्भवतः "**रामादिवत्प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्**"—अर्थात् राम आदि के समान व्यवहार करना चाहिये, रावणादि के समान नहीं—यह भी काव्य निर्माण का एक प्रयोजन रहा है।

(४) "**शब्दकल्पद्रुम**" में श्लोकमय ग्रन्थ को **साहित्य** कहा गया है—

"**मनुष्यकृतश्श्लोकमयः ग्रन्थविशेषः साहित्यम्**"।

(५) अन्यत्र कहा गया है कि "**तुल्यवदेकक्रियान्वयित्वं बुद्धिविशेषविषयत्वं वा साहित्यम्**"।

(६) राजशेखर ने साहित्य की व्याख्या इसप्रकार की है—

"**शब्दार्थयोर्यथावत्सहभावेन विद्या साहित्यविद्या।**"

अर्थात् सहृदयों को आह्लादित करने वाले शब्द और अर्थ के यथायोग्य सहयोग वाली विद्या = शास्त्र **साहित्यविद्या** = अलङ्कारप्रतिपादकशास्त्र कहलाती है।

इसप्रकार "साहित्य" शब्द "सहित" शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है

"परस्पर मिला हुआ"। "सहितयोर्भावः साहित्यम्"—सम्पूर्ण साहित्य शब्द और अर्थ के संयोग से बना है। इसीलिये काव्य की प्रारम्भिक परिभाषायें शब्द और अर्थ को ही आधार मानकर की गई हैं। वैज्ञानिक ढंग से साहित्यशास्त्र पर उपलब्ध होने वाला पहला ग्रन्थ **भामह** का **काव्यालङ्कार** है, जिसमें भामह ने काव्य का लक्षण "**शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्**" किया है रुद्रट ने "**ननु शब्दार्थौ काव्यम्**" काव्य का लक्षण किया है। इसमें इन्होंने "**सहितौ**" पद का सन्निवेश नहीं किया है। कुन्तक ने अपने ग्रन्थ "**वक्रोक्तिजीवितम्**" के प्रथमोन्मेष में छठी कारिका से लेकर १० वीं कारिका तक काव्य के लक्षण के विषय में विवेचन किया है। इस लक्षण को स्पष्ट करने के लिए १६-१७ वीं कारिका में शब्द, अर्थ तथा साहित्य—इन तीनों का विवेचन कर काव्य के लक्षण की व्याख्या को पूर्ण किया है। कुन्तक ने भामह की काव्य परिभाषा "**शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्**" में अपनी "**वक्रोक्ति**" को सम्मिलित कर काव्य की परिभाषा की है। कुन्तक का काव्यलक्षण इसप्रकार है—

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनी।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि ॥ १.७

अर्थात् काव्यमर्मज्ञों के आह्लादकारक, सुन्दर (वक्र) कवि व्यापार वाली रचना (बन्धे) में व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं। इसप्रकार कुन्तक के मत में न केवल कवि कौशल से कल्पित सौन्दर्यातिशय वाले शब्द को ही काव्य कहा जा सकता है और न ही रचना के वैचित्र्य से चमत्कारी अर्थ को ही काव्य कहा जा सकता है, अपितु शब्द और अर्थ दोनों ही मिलकर काव्य कहलाते हैं ("**तेन शब्दार्थौ द्वौ सम्मिलितौ काव्यमिति स्थितम्**")। इसलिये जिसप्रकार प्रत्येक तिल में तैल रहता है, उसीप्रकार शब्द और अर्थ दोनों में ही तद्विदाह्लादकारित्व (काव्यत्व) रहता है, किसी एक में नहीं (**तस्माद् द्वयोरहि प्रतितिलमिव तैलं, तद्विदाह्लादकारित्वं वर्तते न पुनरेकस्मिन्**")। इसीलिये कुन्तक ने अपने काव्य लक्षण में "सहितौ" पद को स्थान दिया है। अर्थात् शब्द और अर्थ "सहितौ = सहभाव में" "**साहित्य**" में अवस्थित ही काव्य कहलाते हैं। इस शब्द और अर्थ के "सहितौ = सहभाव = साहित्य" पर कुन्तक ने १६वीं कारिका की व्याख्या में लिखा है—

"**अत एवैतदुच्यते। यदिदं साहित्यं नाम तदेतावति निःसीमनि समयाध्वनि साहित्यशब्दमात्रेणैव प्रसिद्धम्। न पुनरेतस्य कविकर्मकौशलकाष्ठाधिरूढरमणीयस्याद्यापि कश्चिदपि विपश्चिदयमस्य परमार्थ इति मनाङ्मात्रमपि विचारपदवीमवतीर्णः। तदद्य सरस्वतीहृदयारविन्दमकरन्दबिन्दुसन्दोहसुन्दराणां सत्कविवचसामन्तरामोदमनोहरत्वेन परिस्फुरदेतत् सहृदयषट्चरणगोचरतां नीयते।**"

अर्थात् इसीलिये यह कहा जाता है कि यह जो वास्तविक "**साहित्य**" है वह आज तक अर्थात् ग्रन्थकार कुन्तक के समय तक इतने विस्तृत असीम समय की परम्परा में केवल नाममात्र "**साहित्य**" शब्द से प्रसिद्ध रहा है। परन्तु कविकर्म की कौशल की

सीमा प्राप्ति से रमणीय इस "**साहित्य**" शब्द का यह वास्तविक अर्थ है, इस बात का आज तक भी किसी विद्वान् ने विचार नहीं किया है इसलिये आज हम सरस्वती हृदयारविन्द के मकरन्दबिन्दुसमूह से सुन्दर और सत्कवि के वाक्यों के आन्तरिक आनन्द से मनोहररूप से अनुभव होने वाले इस साहित्य शब्द के अर्थ को सहृदयरूपी भ्रमरों के सामने प्रस्तुत करते हैं।

"**साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काप्यसौ।**
अन्यूनातिरिक्तत्वमनोहारिव्यवस्थितिः ॥ १.१७

सहितयोर्भावः साहित्यम् । अनयोः शब्दार्थयोर्या काप्यलौकिकी चेतनचमत्कारितायाः कारणम्, अवस्थितिर्विचित्रैव विन्यासभङ्गी। कीदृशी, अन्यूनातिरिक्तत्वमनोहारिणी, परस्परस्पर्द्धित्वरमणीया । अस्यां द्वयोरेकतरस्यापि न्यूनत्वं निकर्षो न विद्यते, नाप्यतिरिक्तत्वमुत्कर्षो वास्तीत्यर्थः ।

ननु च तथाविधं साम्यं द्वयोरुपहतयोरपि सम्भवतीत्याह शोभाशालितां प्रति"। शोभा सौन्दर्यमुच्यते । तया शालते श्लाघते यः स शोभाशाली, तस्य भावः शोभाशालिता, तां प्रति सौन्दर्यशालितां प्रतीत्यर्थः । सैव सहृदयाह्लादकारिता । तस्यां स्पर्द्धित्वेन याः सावस्थितिः परस्परसाम्यसुभगमवस्थानं सा साहित्यमुच्यते। तत्र वाचकस्य वाचकान्तरेण वाच्यस्य वाच्यान्तरेण साहित्यमभिप्रेतम्"

अर्थात् काव्य की शोभाशालिता (सौन्दर्याधायकता) के प्रति इन दोनों शब्द तथा अर्थ की न्यूनता और आधिक्य से रहित (परस्पर एक दूसरे के साथ स्पर्द्धा के कारण) अनिर्वचनीय लोकोत्तर मनोहारिणी स्थिति ही "**साहित्य**" है।

सहित (शब्द और अर्थ) का भाव **साहित्य** है। इन (सहित) शब्द और अर्थ की जो कोई भी अलौकिक सहृदयों की चमत्कारिता का कारण है, अवस्थिति का अर्थ है विचित्र विन्यासभङ्गी अर्थात् रचनाशैली। वह विन्यासभङ्गी कैसी है, न्यूनता और आधिक्य से रहित होने के कारण मनोहारिणी अर्थात् एक दूसरे के साथ (शब्द की अर्थ के साथ और अर्थ की शब्द के साथ) स्पर्धा के कारण रमणीया। इस विन्यास-भङ्गी अर्थात् रचनाशैली में दोनों में से (शब्द और अर्थ) किसी एक की भी न्यूनता (अपकर्ष) नहीं होती है और न ही अधिकता (उत्कर्ष) ही होती है।

प्रश्न—इसप्रकार का साम्य उपहत शब्द और अर्थ दोनों में भी हो सकता है, अतः कहा है, (**उत्तर**) "**शोभाशालितां प्रति**"। शोभा सौन्दर्य को कहते हैं। उससे जो शोभित प्रशंसित होता है वह **शोभाशाली** कहलाता है, उसका भाव **शोभाशालिता** है; उसके प्रति अर्थात् शोभाशालिता के प्रति, यह अर्थ हुआ। यही सहृदयाह्लादकारिता है, उसमें (शोभाशालिता अथवा सहृदयाह्लादकारिता में) स्पर्द्धित्वेन (अन्यूनातिरिक्त-त्वेन) जो वह अवस्थिति अर्थात् परस्पर समानता में सुन्दररूप से जो शब्द और अर्थ की स्थिति है वह "**साहित्य**" कहलाती है। उस "**साहित्य**" में वाचक शब्द का

दूसरे वाचक शब्द के साथ और वाच्य अर्थ का दूसरे वाच्य अर्थ के साथ "**साहित्य—सहभाव**" अभिप्रेत है ।

"**तस्मादेतयोः शब्दार्थयोर्यथास्वं यस्यां स्वसम्पत्सामग्रीसमुदायः सहृदयाह्लादकारी परस्परं स्पर्धया परिस्फुरति, सा काचिदेव वाक्यविन्यासरूपा सम्पत् साहित्यव्यपदेशभाग् भवति ।**"

इसलिये जिस रचना में शब्द और अर्थों का यथायोग्य अपनी (अन्यूनातिरिक्तत्वरूप) सम्पत्सामग्री का समुदाय सहृदयों के हृदयों को आह्लादित करने वाला परस्पर स्पर्धा से स्फुरित होता है, वह कोई विशिष्ट वाक्यविन्यासरूपा सम्पत् "**साहित्य**" नाम से कही जाती है । शब्द और अर्थ का यह साहित्य (सहभाव) कुन्तक की दृष्टि में—

समसर्वगुणौ सन्तौ सुहृदाविव संगतौ ।
परस्परस्य शोभायै शब्दार्थौ भवतो यथा ॥

है अर्थात् समानरूप से सम्पूर्ण गुणों से युक्त दो मित्रों के समान मिले हुये शब्द और अर्थ परस्पर एक दूसरे की शोभा के लिये होते हैं। यहाँ पर कुन्तक ने शब्द और अर्थ के परस्पर सहभाव की दो मित्रों से उपमा दी है अर्थात् जिसप्रकार दो मित्र परस्पर मैत्रीभाव से एक दूसरे से संगत रहते हैं उसीप्रकार शब्द और अर्थ को भी परस्पर एक दूसरे के साथ संगत रहना चाहिये । तथा जिसप्रकार मित्र एक दूसरे की शोभा को बढ़ाते हैं, एक दूसरे की सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक होते हैं, उसीप्रकार शब्द और अर्थ को भी एक दूसरे की शोभा बढाने वाला होना चाहिये ।

परिणामतः शब्द और अर्थ को परस्पर "**सुहृदाविव संगतौ**" और "**परस्परस्य शोभायै**" होना चाहिये। कालिदास के शब्दों के अनुसार वे दोनों बराबर इतने सुन्दर हों कि इन दोनों के मध्य यह निर्णय करना कठिन हो जाय कि कौन सौन्दर्य को भूषण करने वाला है और कौन सुन्दर भूष्य किया जा रहा है । तद्यथा—

अन्योन्यशोभाजनकाद बभूव ।
साधारणो भूषणभूष्यभावः ॥ कुमारसम्भव

इसप्रकार उपर्युक्त विवेचन का सारांश यह है कि **काव्य में प्रयुक्त शब्द और अर्थ के मध्य एक विशिष्ट प्रकार के अलौकिक सौन्दर्य का सम्बन्ध "साहित्य" कहलाता है।** इसी को दूसरे शब्दों में इसप्रकार कहा जा सकता है कि "**काव्य एक सुन्दर अभिव्यक्ति है, और साहित्य एक सुन्दर शब्द और अर्थ का सम्बन्ध है** । शब्द और अर्थ का विशिष्ट प्रकार का सम्बन्ध ही "साहित्य" है, जैसा कि कुन्तक ने कहा है—"**विशिष्टमेवेह साहित्यमभिप्रेतम्**" **इति** ।

संक्षेप में, शब्द और अर्थ का विशिष्ट सम्बन्ध "साहित्य" कहलाता है ।

कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भ में शब्द और अर्थ के साहित्य=सहभाव की ओर इसप्रकार संकेत किया है—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।। रघुवंश १.१.

माघ ने "**शिशुपालवधम्**" नामक अपने महाकाव्य में कहा है—

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ।।

शब्द और अर्थ इन दोनों के अन्दर किसी प्रकार का उच्चावच की, न्यूनातिरिक्तत्व का अथवा उत्कर्षापकर्ष का भाव नहीं है। अतः शब्द और अर्थ का सहभाव ही "**साहित्य**" कहलाता है ।